भाषा की भव्यता एवं लिपि का लालित्य

....बलदेवानन्द सागर

प्रस्तावना

सृष्टि को अनादि मानने वाले वैदिक विद्वान् भाषा को भी अनादि ही मानते हैं | भाषा और लिपि को सरलता से समझने-समझाने के लिए अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन तथा भारतीय और विदेशी भाषाविदों, भाषावैज्ञानिकों एवं भाषाशास्त्रियों ने गहन अध्ययन करके जो निष्कर्ष दिया है, उसका सिंहावलोकन करना बहुत आवश्यक है |

भाषा के अवतरण, स्वरूप एवं इतिहास का सिंहावलोकन

सबसे पहले हम कुछ वरिष्ठ और सुख्यात भारतीय मनीषियों के निष्कर्षों का परिशीलन करते हैं-

[१] पं. रघुनन्दन शर्मा

पं. रघुनन्दन शर्मा द्वारा विरचित 'वैदिक सम्पत्ति' एक अद्भुत ग्रन्थ है | वैदिक संस्कृत, भारतीय परम्परा और भारत में उत्पन्न ज्ञानभण्डार को जानने के लिये यह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें उन सभी विषयों को बताया गया है, जो मानव सभ्यता के आधाररूप हैं । 'वैदिक सम्पत्ति' में आचार्य पं. रघुनन्दन शर्मा जी ने 'भाषा' का उद्भव कैसे हुआ? 'लिपि' का वर्तमान स्वरूप कैसे बना? भौतिकवाद, साम्यवाद, प्रकृतिवाद इत्यादि वादों से पूर्व कौन सा वाद था? आर्यसभ्यता क्यों महत्त्वपूर्ण है? वेद कैसे अपौरुषेय हैं? इत्यादि सभी प्रश्नों को वेद, पुराण, उपनिषद्, अंग्रेजीग्रन्थ और महापुरुषों के वचनों से परिलक्षित किया गया है।

अपने शोधग्रन्थ 'वैदिक सम्पत्ति' के पृष्ठ-२३८ में वे लिखते हैं - 'मनुष्य परमेश्वर की विशिष्ट रचना है | मनुष्य ही नहीं प्रत्युत सभी योनियाँ परमेश्वर की विशिष्ट रचना है | जिस

मनुष्यजाति को ईश्वरप्रदत्त ज्ञान मिला है, उसको भाषा भी ईश्वरीय-प्रेरणा से ही प्राप्त हुयी है, क्योंकि ज्ञान बिना भाषा के ठहर ही नहीं सकता है, यानि वह वंश-परम्परा से चल ही नहीं सकता है | ज्ञान और भाषा का सम्बन्ध जुड़वा भाई-बहिन के समान है | एक के बिना दूसरा रह ही नहीं सकता है |'

'जिस प्रकार से ज्ञान बिना सिखाये नहीं आता, उसी प्रकार से भाषा भी बिना सिखाये नहीं आती | मनुष्य वही भाषा बोलता है जो सुनता है | माता की गोद में या कुटुम्ब में जो भाषा सुनता है वही भाषा बोलता है | यही कारण है कि देश-देश, प्रान्त-प्रान्त और गाँव-गाँव की भाषा में भेद है, अर्थात् मनुष्य बिना सिखाये हुए कोई भाषा नहीं बोल सकता है |'

इसी क्रम में आधुनिक और पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों के अनेक निराधार और तर्करहित भाषा-सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए और भाषा की उत्पत्ति की व्याख्या करते हुए वे 'वैदिक सम्पत्ति' के पृष्ठ-२४४ में लिखते हैं – 'बात तो असल यह है कि न बिना ज्ञान के भाषा बन सके और न बिना भाषा के ज्ञान हो सके | नाम और नामी या रूप और शब्द का घनिष्ठ सम्बन्ध है | इनमें से एक दूसरे को छोड़कर अकेला रह ही नहीं सकता है | ऐसी दशा में यही तथ्य उपलब्ध होता है कि आदिम मनुष्य ज्ञान और भाषा के सहित ही पैदा हुए, परन्तु वही प्रश्न यहाँ भी आता है कि जब बिना निमित्त के ज्ञान और भाषा का बोध नहीं होता तब आदि में, जिसके पूर्व कोई ज्ञान और भाषा थी ही नहीं, उस समय मनुष्यों में किस निमित्त से ज्ञान और भाषा का आविर्भाव हुआ? इसका उत्तर यही है कि आदिज्ञान और आदिभाषा का आविर्भाव परमात्मा की ओर से हुआ |'

[२] पं.भगवद्दत्त जी

पं.भगवद्दत्त जी ने अपने विशालकाय शोधग्रन्थ, 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' में अपौरुषेय वेद और उनकी शाखाओं, वेदों के भाष्यकारों, ब्राह्मण तथा आरण्यक-ग्रन्थों का स्वरूप बताया है | इस ग्रन्थ में भाषा-शास्त्र तथा भारत के प्राचीन इतिहास-सम्बन्धी अपने मौलिक चिन्तन का सार प्रस्तुत करते हुए पं.भगवद्दत्त जी ने भाषा की उत्पत्ति के विषय में पाणिनि, पतञ्जलि, भर्तृहरि आदि भारतीय आचार्यों के प्राचीन मन्तव्यों और निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है और भाषा की

उत्पत्ति के आर्षसिद्धान्त को प्रमाणित किया है | उन्होंने पाश्चात्य भाषाविज्ञान की आलोचना करके 'सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है' - इस तथ्य का प्रतिपादन किया है | पं.भगवद्दत्त जी की धारणाएँ और उपपत्तियाँ, तत्कालीन विद्वत्-संसार में हड़कम्प मचा देने वाली थीं। पं.भगवद्दत्त जी ने ब्राह्मण और आरण्यक-साहित्य, उपलब्ध और अनुपलब्ध ब्राह्मणों के विवरण और भाष्यों और भाष्यकारों की पूरी जानकारी देकर ऐसे भाष्यकारों की चर्चा की है जिनके अस्तित्व की जानकारी भी लोगों को नहीं थी। वे अपनी पुस्तक 'हिन्दी निरुक्त' के प्रथम संस्करण की भूमिका में (१९४९) पं.भगवद्दत्त जी लिखते हैं - 'इस देश के अनेक आधुनिक 'आचार्य'-लोगों ने यह लिख दिया कि भाषा-विज्ञान का उदय सर्वप्रथम यूरोप में हुआ! यही बात आलोचनात्मक साहित्य के लिए भी कही और लिखी गयी थी, पर जब मैंने, अब से दस-पन्द्रह वर्ष पहले 'माधुरी'-पत्रिका में 'आलोचना का जन्म और विकास' शीर्षक से लेख छपाकर उस भ्रान्त धारणा का निराकरण किया, तब लोगों ने वैसा लिखना बन्द किया

[३] आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

अपनी पुस्तक 'भारतीय भाषाविज्ञान' में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं - 'विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्दसमूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।'

[४] डॉ. कामता प्रसाद गुरु

'हिन्दी व्याकरण' में भाषा की परिभाषा करते हुए डॉ. कामता प्रसाद गुरु कहते हैं - 'भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों तक भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।'

[५] डॉ. श्यामसुन्दर दास

अपने ग्रन्थ 'भाषाविज्ञान' में डॉ. श्यामसुन्दर दास लिखते हैं - 'मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।'

[६] डॉ. बाबूराम सक्सेना

अपनी कृति 'सामान्य भाषाविज्ञान' में डॉ. बाबूराम सक्सेना बताए हैं - 'जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।'

[७] डॉ. भोलानाथ तिवारी

अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान' में भाषा की परिभाषा का उल्लेख डॉ. भोलानाथ तिवारी इस प्रकार से करते हैं - 'भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक (arbitrary) ध्वनि-प्रतीकों की वह संचरनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं ।'

[८] श्रीसुरेश सोनी

अपने लेख 'ध्वनि तथा वाणीविज्ञान : सात सुरों का भारतीय संसार' में वैखरी वाणी का उल्लेख करते हुए श्रीसुरेश सोनी कहते हैं- 'सृष्टि की उत्पत्ति की प्रक्रिया नाद के साथ हुई। जब प्रथम महास्फोट (बिग बैंग) हुआ, तब आदि नाद उत्पन्न हुआ। उस मूल ध्वनि को जिसका प्रतीक 'ॐ' है, नादब्रह्म कहा जाता है। पातञ्जल-योगसूत्र में पतञ्जलि मुनि ने इसका वर्णन 'तस्य वाचकः प्रणव:' की अभिव्यक्ति ॐ के रूप में है, ऐसा कहा है। माण्डूक्योपनिषद् में कहा है-

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।

यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव। - [माण्डूक्य-उपनिषद् - १]

[अर्थात् ॐ अक्षर अविनाशी स्वरूप है। यह सम्पूर्ण जगत् का ही उपव्याख्यान है। जो हो चुका है, जो है तथा जो होने वाला है, यह सब जगत् ओंकार ही है तथा जो ऊपर कहे हुए तीनों कालों से अतीत अन्य तत्व है, वह भी ओंकार ही है।]'

आगे श्रीसुरेश सोनी लिखते हैं -

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:,

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥ ...[ऋग्वेद- १-१६४-४५]

[अर्थात् वाणी के चार पाद [परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी] होते हैं, जिन्हें विद्वान् मनीषी जानते हैं। इनमें से तीन शरीर के अंदर होने से गुप्त हैं परन्तु चौथे [वैखरी] का अनुभव कर सकते हैं। इसको उच्चारित करके मनुष्य अपना वाग्-व्यवहार करते हैं]'

[९] आचार्य ओम्-प्रकाश पाण्डेय

अपने शोध-लेख 'भाषा का अवतरण' में 'ऋग्वेद' की ऋचा का सन्दर्भ देते हुए आचार्य ओम्-प्रकाशपाण्डेय कहते हैं - 'ऋग्वेद' में 'ऐतरेय उपनिषत्' के शान्तिपाठ का निम्नांकित मन्त्र द्रष्टव्य है जिसमें वाणी को मन में और मन को वाणी में प्रतिष्ठित होने के लिए प्रार्थना की गई है | मन्त्र इस प्रकार से है -

'ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता । मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् । आविराविर्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः । श्रुतं मे मा प्रहासीः । अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधामि । ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥'

[अर्थात् वाणी मेरे मन में प्रतिष्ठित होवें | मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित होवें... आदि|]

वाणी अर्थात् भाषा का यह सन्दर्भ इतना प्राचीन होने के साथ ही 'व्याकरण' [वेदांग] के द्वारा वेद और लोक के शब्दों की व्याख्या करने की परम्परा भी सनातन रही है, इसके विना वेद को समझना सरल नहीं है - 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम् ।' सर्वप्रथम व्याकरण की अनुश्रुति वेद में होती है –

'चत्वारि शृंगास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवा मर्त्याम् आविवेश ।।' (ऋग्वेद- ४.५८.३)

[अर्थात् इस वृषभ रूपी व्याकरण के चार सींग (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) हैं । इसके तीन पाद (भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्) हैं । इसके दो शिर (सुप् और तिङ्) हैं । इसके सात हाथ (सात विभक्तियाँ) हैं। यह उरस्, कण्ठ और मूर्धा इन तीन स्थानों से बँधा हुआ शब्द करता है ।]

भाषा की इन विभिन्न परिभाषाओं की समन्विति

चिन्तकों और विशेषज्ञों की इन विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि- 'मुख से उच्चरित ऐसे परम्परागत, सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की समष्टि ही भाषा है जिनकी सहायता से हम आपस में अपने विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं।'

भाषा मनुष्य के लिए ईश्वर का अनोखा वरदान है। भाषा के बिना मनुष्य-विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। सभ्यता और संस्कृति के सोपान पर आरोहण करने के लिए भाषा की भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण है कि भाषा के बिना किसी भी प्रकार की उन्नति करना सम्भव नहीं। मानव जाति की प्रत्येक पीढ़ी नई भाषा उत्पन्न नहीं करती। वह अपने पूर्वजों से उसे सीखती है और इस प्रकार भाषा परम्परागत सम्पत्ति है। इसकी धारा अविच्छिन्न चलती रहती है। साथ ही यह अर्जित सम्पत्ति है अर्थात् आपस के या सामुदायिक साहचर्य द्वारा वह सीखनी पडती है।

संस्कृति की संवाहिका है - भाषा

भाषा और संस्कृति दोनों परम्परा से प्राप्त होती हैं। अत: दोनों के बीच गहरा सम्बन्ध रहा है।जहाँ समाज के क्रिया-कलापों से संस्कृति का निर्माण होता है, वहाँ सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा का ही आधार लिया जाता है। पौराणिक एवं साहसिक कहानियाँ, पर्व-त्यौहार, मेला-महोत्सव, लोक-कथाएँ, ग्रामीण एवं शहरी जीवन-शैली, प्रकृति-पर्यावरण, कवि-कलाकारों की रचनाएँ, महान् विभूतियों की कार्यावली, राष्ट्रप्रेम, समन्वय-भावना आदि सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। दरअसल, किसी भी क्षेत्र विशेष के मानव समुदाय को परखने के लिए उसकी भाषा को समझना आवश्यक है। किसी निर्दिष्ट गोष्ठी के ऐतिहासिक उद्भव तथा जीवन-शैली की जानकारी प्राप्त करने हेतु उसकी भाषा का अध्ययन जरूरी है। संपृक्त जन-समुदाय के चाल-ढाल, रहन-सहन, वेशभूषा ही नहीं, अपितु उसकी सच्चाई, स्वच्छता, शिष्टाचार, सेवा-भाव, साहस, उदारता, निष्ठा, श्रमशीलता, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, कर्त्तव्यपरायणता आदि उसकी भाषा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाते हैं।

मूलभाषा वैदिक और तदनुवर्तिनी लौकिक संस्कृत

आचार्य पाणिनि ने जिस व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया, वह न केवल तत्कालीन संस्कृत भाषा का नियामक शास्त्र बना, अपितु उसने आगामी संस्कृत रचनाओं को भी प्रभावित किया। पाणिनि से पूर्व भी व्याकरण शास्त्र के अन्य आचार्यों ने इस विशाल संस्कृत भाषा को नियमों में बांधने का प्रयास किया था, परन्तु पाणिनि का शब्दशास्त्र, विस्तार और गाम्भीर्य की दृष्टि से इन सभी में सिरमौर सिद्ध हुआ। पाणिनि ने अपनी गहन अन्तर्दृष्टि, समन्वयात्मक दृष्टिकोण, एकाग्रता, कुशलता, दृढ़ परिश्रम और विपुल सामग्री की सहायता से जिस अनूठे व्याकरण शास्त्र का उपदेश दिया, उसे देखकर बड़े से बड़े विद्वान् आश्चर्य चकित होकर कहने लगे - 'पाणिनीयं महत्सुविरचितम्' - पाणिनि का शास्त्र महान्, सुव्यवस्थित और सुविरचित है; 'महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य' - उनकी दृष्टि अत्यन्त पैनी है; 'शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः' - उनकी रचना अति सुन्दर है; 'पाणिनिशब्दो लोके प्रकाशते' - सारे लोक में पाणिनि का नाम छा गया है, इत्यादि। भाष्यकार मुनि पतंजलि ने पाणिनि को प्रमाणभूत आचार्य, माङ्गलिक आचार्य, सृहृद्, भगवान् आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है। उनके अनुसार पाणिनि के सूत्र में एक भी शब्द अनर्थक नहीं हो सकता और पाणिनीय शास्त्र में ऐसा कुछ नहीं है जो निरर्थक हो। उन्होंने जो सूत्र बनाए हैं, वे बहुत ही चिन्तन-मनन करके बनाए गए हैं। उन्होंने सुहृद् के रूप में व्याकरण शास्त्र का अन्वाख्यान किया है। रचना के समय उनकी दृष्टि भविष्य की ओर थी और वह दूरतर की बात सोचते थे। इस प्रकार उनकी प्रतिष्ठा बच्चे-बच्चे तक फैल गई और विद्यार्थियों में उन्हीं का व्याकरण सर्वाधिक प्रिय हुआ।

भाषा और लिपि का साहचर्य

भाषा के दो प्रमुख आधार माने गये हैं–(१) ध्वनि [नाद] और (२) दृश्य।

किसी भी भाषा का पहले ध्वनि रूप प्रकट होता है। बाद में वह दृश्य रूप में अपने विकास का मार्ग प्रशस्त कर लेती है। अत: हम कह सकते हैं कि भाव तथा विचारों के प्रकाशन का ध्वनि–स्वरूप भाषा है और उसका दृश्य–स्वरूप लिपि अर्थात् भाषा को दृष्टिगोचर करने के लिए जिन प्रतीक–चिन्हों का प्रयोग किया जाता है- उन्हें 'लिपि' कहते हैं।

भाषा और लिपि का सम्बन्ध

भाषा और लिपि का सम्बन्ध सिक्के के दो पहलुओं के समान है। भाषा के बिना किसी लिपि की सम्भावना हो ही नहीं सकती। हाँ बिना लिपि के भाषा सम्भव है। अनेक बोलियाँ और उपभाषाएँ ऐसी हैं जो भावों और विचारों को व्यक्त करने का कार्य करती हैं, किन्तु लिपि के अभाव में उनका विशेष महत्व या प्रचार–प्रसार नहीं हो पाता।

भाषा या बोली का ध्वनि स्वरूप स्थान–काल की सीमा में रहकर ही प्रकट किया जाता है, जबकि लिपि, भाषा को स्थान और काल के बन्धन से मुक्त कर देती है। इसका तात्पर्य यह है कि बोली गई भाषा किसी स्थान विशेष में उपस्थित व्यक्तियों तक ही सीमित रहती है, किन्तु लिखी गई भाषा दीर्घकाल पर्यन्त विस्तृत असीम भूमि पर कहीं भी उन विचारों और भावों को पहुँचा सकती है। इस लिए लिपि को भाषा का एक अनिवार्य एवं अत्युत्तम अंग माना गया है। भाषा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने तथा दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रखने का काम लिपि ही करती है।

लिपि के अभाव में भाषा का अस्तित्व संकटापन्न

लिपि के अभाव में अनेक भाषाएँ उत्पन्न होकर नष्ट हो गई । आज उनका नामों–निशान तक नहीं रहा। लिपि भी इससे अछूती नहीं रही। 'ललितविस्तर' आदि प्राचीन ग्रंथों में तत्कालीन प्रचलित लगभग चौंसठ लिपियों का नामोल्लेख मिलता है, लेकिन आज उसमें से अधिकांश लिपियाँ अथवा उनमें लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है।

कुछ प्राचीन लिपियाँ

कुछ प्राचीन लिपियाँ आज भी एक अनसुलझी पहेली बनी हुई हैं। उनमें लिखित अभिलेख आज–तक नहीं पढ़े जा सके हैं। मध्यप्रदेश के जबलपुर शहर के आस–पास विस्तृत पर्वतों एवं गुफाओं में टंकित 'शंख लिपि' के सुन्दर अभिलेखों को भी आज–तक नहीं पढ़ा जा सका है। इस लिपि के अक्षरों की आकृति शंख के आकार की है। प्रत्येक अक्षर इस प्रकार लिखा गया है कि उससे शंखवाद आकृति उभरकर सामने दिखाई पड़ती है। अत: अनुमान लगाया जा रहा है कि शायद यही 'शंखलिपि' है।

विद्वान गवेषक इन लेखों को पढने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन अभी तक योग्य सफलता नहीं मिल सकी है। खरोष्ठी लिपि को भी पूर्णत: नहीं पढ़ा जा सका है। आज भी विविध सिक्कों, मृद्पात्रों एवं मुहरों पर लिखित ऐसी कई लिपियाँ और भाषाएँ हमारे संग्रहालयों में विद्यमान हैं जो एक अनसुलझी पहेली बनी हुई है और हमारे भाण्डागारों की शोभा बढ़ रही हैं।

भाषा और लिपि की अन्योन्याश्रयता

इतना तो निश्चित कहा जा सकता है कि भाषा और लिपि दोनों ही एक–दूसरे के विकास में गाड़ी के दो पहियों की तरह अहम भूमिका अदा करती हैं। लिपि के अभाव में कोई भी भाषा चिरंजीवी नहीं रह सकती और अगर उसकी अपनी लिपि है तो वह आज खूब फल–फूल रही है। कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जिनकी अपनी लिपि तो नहीं है लेकिन दूसरी लिपियों में आसानी से लिखी–पढ़ी जा सकती हैं। ये भाषाएँ इतनी शुद्ध, स्पष्ट और व्याकरणसम्मत हैं कि किसी भी लिपि में हूब–हू लिखी—पढ़ी जा सकती हैं। जैसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, सिन्धी, मराठी, डोगरी, कश्मीरी, नेपाली, मैथिली आदि भाषाओं की अपनी कोई निश्चित लिपि नहीं है, लेकिन इन्हें किसी भी लिपि में लिखा–पढ़ा जा सकता है। एक प्रकार से देखें तो ये भाषाएँ देवनागरी लिपि पर आधारित हैं। इन्होंने देवनागरी लिपि को विशेषरूप से अपनाया है, लेकिन अन्य लिपियों में भी इन भाषाओं का साहित्य प्राचीनकाल से लिखा जाता रहा है जो हमें विविध ग्रन्थकारों की पाण्डुलिपियों एवं अभिलेखों के रूप में प्राप्त होता है।

भाषा और लिपि में साम्य एवं वैषम्य

भाषा के विकास में लिपि का अत्यधिक महत्व है। लिपि के अभाव में भाषा अपनी सीमा और परिधि से बाहर नहीं जा पाती, किन्तु लिपि का आधार मिलते ही भाषा का विकास एवं विस्तार प्रारंभ हो जाता है। लिपि के द्वारा ही भाषा में अधिक सूक्ष्मता और निश्चितता आती है। विदित हो कि प्राचीनकाल में धर्म, साहित्य तथा इतिहास का लिपि से उतना घनिष्ट सम्बन्ध नहीं था जितना आज है। आज लिपि के अभाव में साहित्य, इतिहास आदि का होना असम्भव–सा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। लिपि के अभाव में भी साहित्य, इतिहास आदि हो सकते हैं और थे भी। अन्तर सिर्फ इतना हो जाता है कि लिपि के अभाव में

वे अनिश्चित से रहते हैं | लिपि के अभाव में धर्म, मंत्र–तंत्र का, साहित्य, कविता का और इतिहास, लोक–कथाओं का रूप ग्रहण कर लेता है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित कहानियाँ तथा विभिन्न देशों की परंपरागत लोक–कथाएँ इसके उदाहरण हैं। जिस प्रकार लेखनकला के अभाव में साहित्य का होना संभव है, उसी प्रकार वर्णमाला के अभाव में लिपि का होना भी सम्भव है। वर्णमाला के अभाव में मनुष्य रज्जु, रेखा–चित्र, लीपने, माढने आदि द्वारा अपने भावों तथा विचारों को लिपिबद्ध करता था। अत: लिपि के अन्तर्गत वर्ण–लिपि के अतिरिक्त रज्जु–लिपि, रेखा–लिपि, चित्र–लिपि आदि को भी शामिल किया जा सकता है।

भाषा ध्वन्यात्मक होती है जबकि लिपि चिह्नात्मक अथवा अक्षरात्मक होती है। भाषा बोली जाती है जबकि लिपि लिखी जाती है। अर्थात् भाषा का उद्‌गम स्थान मुख है जबकि लिपि हाथ द्वारा लिखी जाती है।

लिपि की वर्तमान प्रासंगिकता

भाषा को दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रखने का काम लिपि करती है, अर्थात् लिपि भाषा को स्थायित्व प्रदान करती है। भाषा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का काम भी लिपि ही करती है। प्राचीनकाल में यह कार्य पत्र द्वारा संदेश भेजने के रूप में किया जाता था, जिसमें काफी समय लगता था, लेकिन आज वैज्ञानिक साधनों के विकास के साथ यह कार्य ईमेल, एस्.एम्.एस्, फैक्स, वॉट्स्अप, ट्विटर अथवा इन्स्ट्राग्राम द्वारा तुरन्त हो जाता है। मुख से बोला गया शब्द शीघ्र ही बदला जा सकता है, परन्तु लिखी गई बात को बदलना सरल नहीं होता है। बोली हुई वाणी तुरन्त ही वायु में विलीन हो जाती है, लेकिन लिखित बातें हजारों वर्षों तक स्थिर रहती हैं।

लिपि की उपयोगिता

लगभग दो हज़ार वर्ष से भी अधिक प्राचीन सम्राट् अशोक के शिलालेख तत्कालीन ब्राह्मी लिपि के कारण आज भी हमारी मूल्यवान निधि के रूप में सुरक्षित हैं। अत: यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि हमारे सामने आज जितना भी पुरातन साहित्य विद्यमान है, वह लिपि के स्थायित्व का ही परिणाम है। भाषा और साहित्य की सुरक्षा के लिए भी लिपि ही एकमात्र साधन

है। इस प्रकार मानवजाति के विकास में भाषा और साहित्य का जो महत्व है, लिपि का भी उससे कम नहीं माना जा सकता है। वर्तमान में कई लिपियाँ एवं भाषाएँ आधुनिक विज्ञान, सभ्यता–संस्कृति एवं राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

लिपियों का क्रमिक विकास

कुछ भाषाओं के उच्चारण-वैविध्य के कारण उनकी अपनी लिपियाँ विकसित हुईं । जैसे गुजराती, बंगला, मैथिल, उडिया, तामिल, तेलगु, मलयालम आदि। ये लपियाँ भी हैं और भाषा भी हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी आदि सिर्फ भाषा हैं , लिपि नहीं। अक्सर हम देखते हैं कि आज भी कई लोग हिन्दी या संस्कृत–प्राकृत आदि भाषाबद्ध ग्रन्थ, जो नागरी लिपि में लिखे हुए होते हैं, को भी हिन्दी लिपि में लिखा हुआ कहते हैं; जबकि हिन्दी नाम की कोई लिपि नहीं है। सही में वह लिपि तो देवनागरी अथवा नागरी लिपि है।

उपसंहार

जो कुछ सृष्टि में है वह सब हमारे शरीर में भी वैसा ही है। इसके अनुसार वाक् के चारों रूप – परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी - हमारे शरीर के भीतर भी हैं। परा वाक् का स्थान मूलाधार है। हमारी सभी अभिव्यक्तियां मूलाधार से ही उठती हैं। सारे अनुभव हमारी स्मृति में मूलाधार से होकर अंकित होते हैं। शब्द की उत्पत्ति वर्णों से होती है। कुछ लोग वर्णों की संख्या तिरसठ मानते हैं, कुछ चौंसठ; वर्ण की उत्पत्ति नाद से है। नाद अव्यक्त होता है जबकि वर्ण व्यक्त होता है। नाद ही प्रकाश पैदा करता है। इसी का नाम स्फोट है। आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को लेकर मन के साथ बोलने की इच्छा से युक्त होती है (परा वाक्)। मन शरीर की अग्नि में आघात करता है। यह आघात वायु को प्रेरित करता है (पश्यन्ती), इससे वक्षस्थल में स्वर की उत्पत्ति होती है (मध्यमा) और कण्ठ से वैखरी नामक शब्द प्रकट होता है।

इसी को विपरीत क्रम में देखें तो वाचिक, उपांशु और मानस जप कण्ठ से वक्षस्थल और वक्षस्थल से नाभि की ओर जाते प्रतीत होते हैं। यही अभ्यास क्रमश: व्यक्ति को मूलाधार में प्रवेश कराता है, जहां परावाक् का आसन है। इसी को कुण्डलिनी कहते हैं। ज्ञान, भक्ति, जप आदि किसी भी मार्ग से अभ्यास के द्वारा इस प्रकाश तक पहुंचा जा सकता है। शब्द सबसे

सरल मार्ग प्रतीत होता है। मंत्र के अनुसार इसे साधा जा सकता है। केवल आस्था चाहिए। व्यक्ति मंत्रों द्वारा परावाक् का विकास करता है। जैसे-जैसे वाक् की सूक्ष्म अवस्था आती है, उसे नाद कहते हैं। यही नाद आगे स्थूल होकर शब्द बन जाता है। इसी क्रम में परावाक् भी आवृत होती चली जाती है। शब्द-शक्ति का ज्ञान ही शब्द की शक्ति का सहचर है। ज्ञान का व्यंजक माना है—शब्द को। शब्द का अर्थ से सम्बन्ध है, अर्थ का ज्ञान से। ज्ञान से इच्छा और इच्छा से प्राण और प्राण की क्रिया शक्ति के द्वारा वाग्रूप आनन्द-भाव प्रकट करता है। इसीलिए हमारी वर्णमाला सृष्टि के साथ पूर्ण समन्वय रखने वाली, पूर्ण वैज्ञानिक वर्णमाला है। नाद से अक्षर, शब्द व मन्त्र और मन्त्र से नाद तथा नाद से लय तक शब्द ही कार्य करता है।

*****

- बलदेवानन्द-सागरः

दूरभाष - ९८१० ५६२२ ७७

अणुप्रैषः - baldevanand.sagar@gmail.com